

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 12: भक्तियोग

1/2 (श्लोक 1-10), शनिवार, 04 मार्च 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/XdzRGZ3lCzk>

साकार और निराकार भक्ति और भगवत् प्राप्ति का उपाय

ईश वंदना तथा गुरु वंदना के साथ आज के सत्र का प्रारंभ हुआ। भक्तियोग अपने आप में एक सुंदर अध्याय है। किसी भी योग के माध्यम से उस पार पहुँचा जा सकता है। भक्तियोग, सांख्ययोग इत्यादि। फिर भक्ति की ही महिमा भगवान ने इतनी अधिक क्यों कही है? यह समझने वाली बात है। यहाँ पर भगवान शब्द का प्रयोग है, वासुदेव या श्रीकृष्ण शब्द का प्रयोग नहीं है। भगवान उस परमपिता की भक्ति की ओर इंगित कर रहे हैं जिससे यह सारा विश्व चल रहा है, वह पुरुषोत्तम है कौन?

शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक मार्ग होते हैं। आप किस दिशा में खड़े हैं यह भी महत्वपूर्ण होता है। जैसे आपका मित्र गङ्गा के किनारे खड़ा है। उसे गङ्गा पार करनी है। वह आपसे पूछते हैं - आप तो यहाँ कई बार आए हैं, बताइए कौन सा नाविक मुझे गङ्गा पार करायेगा। पर जब तक वह यह नहीं बताता है कि वह कहाँ खड़ा है वाराणसी या ऋषिकेश में खड़ा है और कौन से तट पर खड़ा है? तब तक आप उसका मार्गदर्शन नहीं कर सकते हैं। भगवान ने मार्ग का चयन भक्तों पर छोड़ दिया है, इसलिये भगवान ने सारे मार्ग बता दिए। सारी बातें बता दी। आप पर छोड़ दिया कि आप कहाँ खड़े हैं। भक्ति मार्ग या ज्ञान मार्ग पर।

12.1

अर्जुन उवाच

एवं(म्) सततयुक्ता ये, भक्तास्त्वां(म्) पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं (न), तेषां(ङ्) के योगवित्तमाः॥1॥

अर्जुन बोले - जो भक्त इस प्रकार (ग्यारवें अध्याय के पचपनवें श्लोक के अनुसार) निरन्तर आप में लगे रहकर आप (सगुण साकार) की उपासना करते हैं और जो अविनाशी निर्गुण निराकार की ही (उपासना करते हैं), उन दोनों में से उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

विवेचन- अर्जुन भगवान से जानना चाहते हैं कि जो भक्त सतत आपकी सगुण, साकार स्वरूप की और जो अविनाशी, निर्गुण, निराकार स्वरूप की उपासना करते हैं। दोनों में से सर्वोत्तम कौन है यह मुझे बताइए?

उपासना- उप अर्थात् नि कट, आसना अर्थात् बैठना। भगवान के निकट बैठना। मूलरूप से उपवास यह शब्द है भगवान के निकट रहना। किंतु हमारे मन में उपवास में क्या खाना है? खिचड़ी या भगर? ऐसे विचार आयेंगे तो क्या वह उपासना हुई? भगवान के निकट रहना हुआ? एक प्रकार के ऐसे साकार भक्त हैं - भक्ति में लीन है। उसके मन से मेरा स्मरण नहीं छूटता। दूसरे प्रकार के निराकार भक्त - अक्षर ब्रह्म की उपासना, जो अव्यक्त अर्थात् जो दिखाई नहीं देते हैं। उस स्वरूप की उपासना करते हैं। दोनों में से सर्वोत्तम कौन हैं, यह अर्जुन जानना चाहते हैं।

12.2

**श्रीभगवानुवाच
मय्यावेश्य मनो ये मां(न्), नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेताः(स्), ते मे युक्ततमा मताः॥2॥**

श्रीभगवान् बोले - मुझ में मन को लगाकर नित्य-निरन्तर मुझ में लगे हुए जो भक्त परम श्रद्धा से युक्त होकर मेरी (सगुण साकार की) उपासना करते हैं, वे मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ योगी हैं।

विवेचन -जैसे कोई माँ के दो बेटे हैं कोई कह रहा है कि मैं किसे ले जाऊँ छोटा या बड़ा तो माँ तुरंत कहती है बड़े को ले जाओ क्योंकि छोटा मुझ पर निर्भर है, उसे मेरे पास रहने दो, बड़े को ले जाओ। वैसे भगवान बता रहे हैं कि जो मुझ में सदा युक्त रहते हैं। जिसने अपने मन को मेरे अंदर लगा दिया है।

सगुण, साकार अर्थात् मूर्ति रूप जिनका आकार है, जिसकी वे पूजा करते हैं। जो नित्य उपासना करते हैं। मेरे मत से वही सर्वश्रेष्ठ योगी है।

**सौंप दिया है सब भार तुम्हारे हाथों में।
हार तुम्हारे हाथों में जीत तुम्हारे हाथों में ॥**

जो सब कुछ मुझ पर सौंप देते हैं, उनका योगक्षेम भी मुझे ही देखना पड़ता है, ऐसा भगवान कहते हैं।

12.3, 12.4

**ये त्वक्षरमनिर्देश्यम्, अव्यक्तं(म्) पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं(ञ्) च, कूटस्थमचलं(न्) ध्रुवम्॥3॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं(म्), सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव, सर्वभूतहिते रताः॥4॥**

और जो (अपने) इन्द्रिय समूह को वश में करके चिन्तन में न आने वाले, सब जगह परिपूर्ण, देखने में न आने वाले, निर्विकार, अचल, ध्रुव, अक्षर और अव्यक्त की तत्परता से उपासना करते हैं, वे प्राणिमात्र के हित में प्रीति रखने वाले (और) सब जगह समबुद्धि वाले मनुष्य मुझे ही प्राप्त होते हैं।

जो अपनी इन्द्रियों को वश में करके अचिन्त्य, सब जगह परिपूर्ण, अनिर्देश्य, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, अक्षर और अव्यक्त की उपासना करते हैं, वे प्राणिमात्र के हित में रत और सब जगह समबुद्धि वाले मनुष्य मुझे ही प्राप्त होते हैं।

विवेचन - भगवान कहते हैं ज्ञान मार्ग पर चलने वाले भी मुझे प्रिय हैं। जैसे माँ कहती है, मेरा बड़ा बालक भी मुझे प्रिय है।

अव्यक्त, अक्षर की अर्थात् जिसका क्षर नहीं होता, जो नित्य की उपासना करते हैं। वे चराचर सृष्टि में मेरा ही चिंतन करते हैं। सारी इंद्रियों को- पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और एक मन को भी नियंत्रित करते हैं। सभी इंद्रियों का निग्रह करते हैं। अपने वश में रखते हैं। सभी को समान भाव से देखते हैं। वे मुझे ही प्राप्त होते हैं। जो सभी भूत मात्र के हित में लगे रहते हैं। वे मुझे प्रिय होते हैं। ऐसे भक्त जो निर्गुण निराकार की भक्ति करने वाले हैं। सभी में ईश्वर को देखने वाले भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। आगे भगवान समझाते हैं।

12.5

**क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं(न्), देहवद्भिरवाप्यते॥5॥**

अव्यक्त में आसक्त चित्त वाले उन साधकों को (अपने साधन में) कष्ट अधिक होता है; क्योंकि देहाभिमानीयों के द्वारा अव्यक्त-विषयक गति कठिनता से प्राप्त की जाती है।

विवेचन - निराकार ब्रह्म में मन लगाने वाले भक्तों के बारे में भगवान कहते हैं - कि यह मार्ग थोड़ा सा कठिन है। इसमें क्लेश अधिक है। अव्यक्त की उपासना में दुःख झेलने पड़ते हैं। इसलिए ऐसे लोग स्थितप्रज्ञ हो जाते हैं। समत्व के मार्ग पर चलते हैं। भूत मात्र में सुख- दुःख में समता देखते हैं। वे किसी से द्वेष नहीं करते। प्रेम भावना से सबके साथ समान व्यवहार करते हैं।

12.6

**ये तु सर्वाणि कर्माणि, मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन, मां(न्) ध्यायन्त उपासते॥6॥**

परन्तु जो कर्मों को मेरे अर्पण करके (और) मेरे परायण होकर अनन्य योग (सम्बन्ध) से मेरा ही ध्यान करते हुए (मेरी) उपासना करते हैं।

विवेचन - जो भक्तजन अपने सर्व कर्म मुझे अर्पण कर, अनन्य भक्तियोग से निरंतर चिंतन करते हुए उपासना करते हैं। ऐसे भक्तों का मैं शीघ्र उद्धार करता हूँ।

12.7

**तेषामहं(म्) समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ, मय्यावेशितचेतसाम्॥7॥**

हे पार्थ ! मुझ में आविष्ट चित्त वाले उन भक्तों का मैं मृत्युरूप संसार-समुद्र से शीघ्र ही उद्धार करने वाला बन जाता हूँ।

विवेचन - यह भक्तियोग का मार्ग स्वीकारने वाले सगुण साकार की भक्ति करने वाले, मुझ पर भार डालकर निश्चित हो जाते हैं। जैसे माँ कभी मार दे तो भी बालक माँ से लिपटा ही रहता है। दूर नहीं होता है। वैसे ही ये भक्त भगवान से लिपटे रहते हैं। जैसे केवट की कहानी आती है - केवट ने सुना था कि अहिल्या नाम की महिला जो पहले पत्थर थी, भगवान श्रीराम के पदस्पर्श से फिर महिला हो गई। इसलिए वे भगवान से कहते हैं कि आप मेरे नाव में बैठेंगे, उससे पहले मैं आपके चरण धोना चाहता हूँ। कहीं मेरी नाव महिला ना बन जाए। दो महिलाओं को मैं नहीं रख सकता। इसलिए पहले मैं आपके चरण धो लूँ उसके बाद आप मेरी नाव में बैठ सकते हैं। माता सीता और लक्ष्मण चकित होते हैं। भगवान मुस्कुराकर अनुमति दे देते हैं। केवट ने अनेक गागर पानी लाकर रगड़ - रगड़ कर भगवान के पैर धोए। क्योंकि वह भक्त था, प्रेम करता था। इसलिये उसे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भगवान श्रीराम नाव में बैठ गए। भगवान के चरण स्पर्श करने के लिए गङ्गा मैया उछलने लगी। उसे शांत करने के लिए केवट ने प्रार्थना की।

नकोस नौके परत फिरू ।
नकोस गंगे उर भरू ॥
श्रीरामा चे नाव गात या।
श्रीरामाला पार करू ॥

गङ्गा मैया थोड़ी शांत हो गई। केवट ने उन्हें पार पहुँचा दिया। भगवान सोचने के लगे इसको कुछ ना कुछ तो देना चाहिए। भगवान के पास तो कुछ नहीं था। वे सब छोड़कर वन के लिए निकल पड़े थे। उन्होंने सीता मैया के तरफ देखा, सीता मैया ने प्रभु का आशय समझ कर तुरंत अपनी अंगूठी निकाल दी। तभी केवट कहता है कि यह मैं नहीं ले सकता। भगवान ने कहा, क्यों नहीं ले सकते? केवट ने कहा जब धन्धा एक हो तो पैसा नहीं लिया जाता। भगवान को आश्चर्य हुआ। तुम्हारा और मेरा एक ही धन्धा कैसे ? केवट ने कहा मैं गङ्गा पार कराता हूँ, आप भवसागर पार कराते हैं। जब मेरी बारी आएगी, मैं नाव में बैठूंगा, तब मुझे भवसागर पार करा देना। भगवान कहते हैं मृत्युसंसार से मैं बहुत सहजता से अपने भक्तों को पार कराता हूँ। लेकिन उसके लिए कुछ नियम हैं। भगवान आगे कहते हैं-

12.8

**मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं(न) निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव, अत ऊर्ध्व(न) न संशयः॥८॥**

(तू) मुझ में मन को स्थापन कर (और) मुझ में ही बुद्धि को प्रविष्ट कर; इसके बाद (तू) मुझ में ही निवास करेगा (इसमें) संशय नहीं है।

विवेचन - जो मुझ में मन और बुद्धि लगा देता है, मैं उसका उद्धार करने के लिए प्रतिबद्ध हूँ। मन का समर्पण तो आसान होता है किंतु बुद्धि का समर्पण आसान नहीं होता है। बुद्धि अनेक प्रश्न खड़े करती है। एक प्रज्ञा चक्षु शरणानंद जी महाराज थे। वृंदावन में रहते थे। वह जन्म से अंधे थे, प्रज्ञा चक्षु थे। रोज शाम वह भक्तों के साथ टहलने जाते थे। एक दिन एक पेड़ के नीचे बैठ गए। फिर एक पत्थर उठाया और उससे बातें करने लगे, अरे तू कितना प्यारा है। तू मेरा इंतजार करना, मैं कल फिर आऊँगा। दूसरे दिन महाराज उसी पेड़ के नीचे बैठे उसी पत्थर को उठाया और फिर से बातें करने लगे। एक शंकालु भक्त को शंका होने लगी। उसने दाहिने ओर का पत्थर, बायी ओर फेंक दिया। अगले दिन महाराज फिर उस जगह गए पत्थर को कहा अरे पत्थर आज कहाँ आ गया। भक्त महाराज के पैरों में गिर गया। महाराज जी आपने कैसे जाना यह पत्थर कहाँ गया? महाराज जी ने कहा चेतनातत्त्व चराचर में व्याप्त है। इस पत्थर में भी वही चेतना विराजमान है। महाराष्ट्र में पंढरपुर में पांडुरंग रहते हैं। लाखों भक्त वहाँ जाते हैं। भक्त पैदल दर्शन करते हैं। भगवान को भक्ति अर्पण करते हैं। शबरी की भक्ति देखकर भगवान प्रसन्न हो गए। वह भगवान से कहती हैं, मैं पैर धोने के लिए गर्म पानी लाती हूँ। भगवान कहने लगे तुम्हारे आँसुओं से पैर धुल गए। शबरी के बेर खाए। शबरी छोटी थी तब मातंग ऋषि ने कहा था भगवान आएँगे। शबरी प्रतीक्षा करने लगी। वह सभी रास्तों को साफ करती थी, जाने किस रास्ते से भगवान आयेंगे। मीठे - मीठे फल चुनती थी और भगवान के लिए लाती थी। भक्ति से भगवान को प्रसन्न किया जा सकता है।

12.9

**अथ चित्तं(म्) समाधातुं(न), न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो, मामिच्छाप्तुं(न) धनञ्जय॥९॥**

अगर (तू) मन को मुझ में अचल भाव से स्थिर (अर्पण) करने में अपने को समर्थ नहीं मानता, तो हे धनञ्जय ! अभ्यास योग के द्वारा (तू) मेरी प्राप्ति की इच्छा कर।

विवेचन - अगर मन में ही निरंतर बात चले-

तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि।

तुझ में है सारा संसार ।।
इसी भावना से अंतर भर ।
मिलूं सभी से तुझे निहार ।।

यदि तेरा चित्त सदा मुझ में स्थिर नहीं हो सकता है तो योग का निरंतर अभ्यास करते रहना चाहिए। अपराध का भाव मन में आए तो मन में क्षमा याचना करनी चाहिए। भगवान आगे कहते हैं - हे धनंजय! मुझे अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है। जैसे स्वामी जी महाराज कहते हैं - गीता पढ़ें, पढ़ाएँ, जीवन में लायें। खाना जैसा भी बना हुआ हो अच्छा ही कहना चाहिए। समन्वय का भाव रखना चाहिए। जिसने बनाया उसे कहना चाहिए कि उसने खाना अच्छा बनाया है। जैसे भोजन में नमक अगर कम हो तो, शांति से अपनी बात समझाना। यह नित्य युक्ता उपासते। यह अभ्यास निरंतर करना होगा। भगवान के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। मन में अगर भक्ति रहे तो वाणी में मधुरता रहे, आँखों में शालीनता हो - इसका अभ्यास करना होगा। भगवान आगे कहते हैं -

12.10

**अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि, मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि, कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥10॥**

(अगर तू अभ्यास (योग) में भी (अपने को) असमर्थ (पाता) है, (तो) मेरे लिये कर्म करने के परायण हो जा। मेरे लिये कर्मों को करता हुआ भी (तू) सिद्धि को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन - अगर तू अभ्यास करने में असमर्थ है। तो तू जो भी दिन भर का काम कर रहा है मेरे लिए कर। छोटे-छोटे कर्म जैसे रसोई बनाना है, तो भगवान के लिए रसोई बना रहे हैं। शिक्षक को पढ़ाना है तो छोटे छोटे बालक में भगवान देखकर उन को पढ़ाना। भगवान के लिए सभी काम करने हैं, यह मानस पूजा निरंतर चलती रहनी चाहिए।

**बुद्धि बल इंद्रियों से जो कुछ भी आचार करूं।
केवल तुझे रिझाने को बस तेरा व्यवहार करूं ।
अब से मेरा सारा व्यवहार तेरा हो जाए ।**

आदि शंकराचार्य कहते हैं

**आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरा
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनाम् ।।**

'हे प्रभु ! मेरी आत्मा तुम हो, बुद्धि माता पार्वती जी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका घर है, सम्पूर्ण विषय- भोग की रचना आप की पूजा है, निद्रा समाधि है, मेरे पाँवों का चलना-फिरना आप की परिक्रमा है तथा मेरी वाणी के सम्पूर्ण शब्द आप के स्तोत्र(स्तुति) हैं, मुँह से निकलने वाला हर शब्द ही स्तोत्र बन जाए। तेरी आराधना बन जाए।

तथा मैं जो भी कर्म करता हूँ, वह सब आप की आराधना ही है। भगवान के लिये कर्मों को करते रहने से भी सिद्धि प्राप्त हो जाएगी। भगवान ने और भी आसान उपाय बताए हैं। अगले सप्ताह यह सब सरल उपाय बताएंगे।

इसी के साथ यह सुंदर सरल विवेचन का समापन हुआ और आगे प्रश्न उत्तर का सत्र लिया गया।

विचार मंथन (प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता- बजरंग लाल जी

प्रश्न -हर पल, हमेशा मन में शान्ति कैसे रह सकती है ?

उत्तर- अष्टांग योग से एक सुंदर बात समझ आती है। कोई भी आघात मन पर आता है। नकारात्मक विचार आते हैं, तब साँस फूल जाती है। किंतु साँसों पर नियंत्रण करना, प्राणायाम करना इससे मन शांत होता है। प्राणायाम करते हुए भी भगवान का नाम लेते हैं तो, मन शांत होने लगता है।

प्रश्नकर्ता - ममता जी

प्रश्न - कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि का अर्थ क्या है ?

उत्तर- भगवान कहते हैं, उन लोगों को सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है जो मुझे पाने के लिए प्रयासरत हैं। परंतु भगवान यह भी कहते हैं कि सिद्धियाँ मिल भी जाए तो भी उसमें उलझना नहीं है।

प्रश्नकर्ता -मनीषा दीदी

प्रश्न- कूटस्थमचलं(न) ध्रुवम् का अर्थ क्या है?

उत्तर - ध्रुव तारा जैसे अपने स्थान पर अचल रहता है। निर्विकार रहता है। वैसे ही इंद्रिय समूह का निग्रह करके जो सदा, नित्य, उपासना करते हैं, भगवान का चिंतन करते हैं। उनके लिए यह बात कही गई है।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करें।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ाये, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥